नैतिक मूल्य एवं मानवीय मूल्यों के उत्थान में गीतादर्शन का महत्त्व

डॉ. अश्विनी पाण्डेय
ज्योतिषाचार्य, पीएच.डी., (लब्धस्वर्णपदक)
ज्योतिषविभाग, काशीहिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी।

गीतादर्शन को समझाने या समझने के लिए किसी भूमिका की आवश्यकता नहीं है। हम सभी जानते है कि महाभारत जैसे विशालकाय ग्रन्थ का सारतम अंश ही ''**गीता**'' है, जैसी स्थिति इसके उत्पत्ति काल में थी वैसी ही भीषण स्थिति आज के आधुनिक भारत राष्ट्र की या सम्पूर्ण विश्व की है। सर्वत्र आत्मीय जनों से संघर्ष देखने को मिल रहा है, महाभारत की भाँति ही आज भाई के सामने भाई उसका खून पीने को तैयार है, भिन्नता मात्र इतनी सी है कि उस समय का युद्ध राष्ट्रधर्म के लिए था और आज के युद्धस्वार्थ सिद्धि के लिए हो रहे हैं।

अब हम यदि सोचे की गीतादर्शन में ऐसा क्या है जो किसी भी राष्ट्र को या विश्व को श्रेष्ठ बना सकता है, तो हमें अपने मन में इस बात को धारण करना होगा कि गीतादर्शन कोई गन्थ नहीं है, यह तो सिद्धान्त प्रतिपादक है, गीता के सभी श्लोक आधुनिक परिपेक्ष्य में पूर्णतया घटित होते है। आज हम देखते हैं कि सारा संसार अकर्मण्यता के सागर में डूबा हुआ मोह ने उसकी स्मृति को नष्टकर दिया है, वह पाश्चात्य की चकाचौध कर देने वाली दुनियाँ में भटक कर कदम–कदम पर ठोकर–पे–ठोकर खाते जा रहा है, भारतीय जनता यह भूल चूकी है कि राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति उसके क्या कर्तव्य है? इन्हीं अंधेरे चक्रव्यूहों से श्रेष्ठता की ओर ले जाने वाला साधन का नाम गीतादर्शन है। महाभारत का प्रलयङ्कारी संग्राम हो रहा था, भाई के सामने भाई उसका खून पीने के लिए तैयार था, ऐसी दशा में अर्जुन का विषादी होना स्वाभाविक था–

गुरुन्न हत्वा हि महानुभावात्। (गीता २.५)

इसी प्रकार सांसारिक परिस्थितियों में कर्म के प्रति संशय रखने वाले सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधत्व अर्जुन में दृष्टिगोचर होता है, और इसी मोह और अकर्मण्यता के निवारण के लिए गीतादर्शन का उद्भव भगवान् श्रीकृष्ण में किया जाता है, और अन्त में स्वयं अर्जुन कहता है–

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धः। (गीता १८-७३)

अतः गीतादर्शन की दिशा सुस्पष्ट है, यह कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है। जिसकी आज सारे विश्व को आवश्यकता है इसी कारण बालगंगाधर तिलक जी कहते हैं– **यदि भारत को पुनः श्रीभारत बनना है, तो अपने गुरुत्व के सिहांसन पर आरूढ होना है तो उसे गीतादर्शन के सिद्धान्तों को अपने आचरण में लाना होगा।** कारावास में गीतारहस्य की रचना के सम्बन्ध में वह कहते हैं कि गीता की ही शक्ति में हम क्रान्तिकारियों के मन में राष्ट्र भक्ति को जन्म दिया है, हमारे मन में गीतादर्शन की यही धारणा विद्यमान है–

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। (गीता २.३७)

आज विश्व में संगठन देखने में कम ही दृष्टिगत होता है। भारत राष्ट्र में ही पंजाब प्रान्त अपने सिक्ख समुदाय को लेकर अलग राज्य तथा दक्षिण भारत के लोग भाषागतविषमताओं के कारण पृथक राज्य की माँग कर रहे है, वही मुस्लिम हवाओं ने उत्तरी भारत को झकझोर कर रख दिया है, यह हिन्दू है यह मुस्लिम इस भावना ने लोगों को विघटित कर दिया है। अतः उन्हें गीतादर्शन का यह ज्ञान देना होगा कि–

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं कारणं व्रज। (गीता १७.६६)

जब यह भावना आधुनिक जनता के मन में जागृत होगी तब समाज स्वयमेव श्रेष्ठता को प्राप्त करेगा। प्रसिद्ध भी है कि–

भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा।

और हमारी संस्कृति गीतादर्शन के ही इधर-उधर ही घूमती है। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का तो यहाँ तक कहता है– हमारे उपनिषदों का भी यही सार है–

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः। (गीता महत्त्वम् ४)

(क) गीतादर्शन द्वारा राष्ट्र में व्याप्त ज्वलंत समस्याएँ एवं उनका निवारण तथा श्रेष्ठता के पथ पर अग्रसारण

अकर्मण्यता का निवारण– भारतीय जनता प्राय: करें या न करें की असमञ्जसता से अपना समय न कर पिछड़ जाती है। यह देखा गया है कि हम अपने जीवन का १/६वाँ भाग हाँ या ना में व्यर्थ कर देते हैं। गीता हमें इस निम्नता से उच्चता की ओर ले जाती है। इसलिए श्रीशङ्कराचार्य जी कहते हैं– जब एक तरफ खाई और दूसरी तरफ कुआ हो तो गीता का स्मरण करो। यह तुम्हारे अन्दर निर्णयका विवेक उत्पन्न कर देगी। आज के युग में सफलता की इतनी आशा करने लगते है कि असफलता के भय से हम उस कार्य को ही नहीं कर पाते, इसी से अकर्मण्यता और नपुंसकता का जन्म होता है, उदाहरण के लिए बाढ़ से ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता असफलता के भय से उनके भाग्य छोड़ दी जाती है और परिणाम हुई विफलता, एक तरफ बाढ़ में फसे व्यक्ति और दूसरी दूसरी तरफ सारा प्रशासन, फिर भी आवश्यकता क्यों? क्योंकि आज के आधुनिक युग की यह धारणा है कि–

भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरूषम्।

इस कारण हम हाथ आए अवसर भी खो बैठते हैं, गीता हमें इसी दैववाद से ऊपर उठाकर यह बतलाती है कि–

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (गीता २.४७)

अपनी सामर्थ्यता के अनुसार कर्म करो, फल को चिन्ता मत करो। इसी से तुम श्री एवं यश को प्राप्त करोगे। अत: गीता के इस सिद्धान्त पर ध्यान दो–

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः। (गीता २.११)

जो गया, वो तो गया उसके लिए अपने भविष्य को मत बर्बाद करो। गीतादर्शन के ज्ञान का ही अभाव है कि १९९३ में हुए हमलों का १३ वर्ष बाद स्पष्टीकरण किया जा रहा है? क्या हम ऐसे राष्ट्र से सफलता की आशा रखते हैं? बिल्कुल नहीं हमें इस सिद्धान्त को अपनाना होगा कि ''**काल करै सो आज कर**'' इसी से हम श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकते हैं। आधुनिक भारत में व्याप्त मोह और भ्रष्टाचार का गीतादर्शन द्वारा निवारण आज अर्थ पिपासा ने मानव को भ्रष्टित कर दिया है, वह नेत्र होते हुए भी नेत्रहीनों की तरह व्यवहार करने लगा है। आज व्यापारी घी में डालडा मिला रहा है तो

कहीं राजनीतिज्ञ घोटालें ही घोटालें करते जा रहे है, अयोग्य नौकरी पा रहे है और योग्य आत्म हत्याएँ कर रहे है, यह मेरा है यह पराया, इसी भावना से आज का राष्ट्र खोखला होता जा रहा है, इस धारणा को गीतादर्शन की यह पंक्तियाँ नष्ट कर सकती है– **सर्वस्य चाहं हृदिसन्निविष्टो।** (गीता १५.१५) अर्थात् सभी प्राणियों में मैं समभाव से विद्यमान हूँ, फिर मेरा पराया किस लिए, श्रेष्ठता के लिए मनुस्मृतियाँ इसी बात पर बल देती है कि– **वसुधैवकुटुम्बकम्।** अर्थात् मानव यह समझ जायेगा कि सम्पूर्ण वसुधा ही मेरा परिवार है जो यह व्याप्त कुकृत्य स्वयमेव नष्ट हो जायेंगे। इसलिये माधवप्रसाद जी कहते है कि इस कलयुग में गीता ही परिवर्तित कर सकती है। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि अर्जुन का मोह नष्ट नहीं हो रहा तो वह कहते हैं कि हे! अर्जुन तू जिनके लिए शोक कर रहा है वे तो कभी थे ही नहीं क्योंकि. . . .

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तर प्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। (गीता २.१३)

इस वचन की आध्यात्मिकता चाहे कुछ भी हो, परन्तु अपना प्रिय कोई चल बसे तो भी वह दूसरे देह में जीवित है यह ज्ञान होने पर शक की तीव्रता कुछ कम हो जाती है। इस सन्दर्भ में गीता से हमें मार्गदर्शन मिलता हैं कि–

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। (गीता १६.२१)

इतिहास में भी यदि हम दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होता है कि अशोक जैसे लोभी क्रोधी और साम्राज्यवादी रक्तपिषासु शासक ने भी इसी आत्मदर्शन से श्रेष्ठता को प्राप्त किया स्वार्थ भी लोभ की श्रेणी में आता है यही लोभ अन्याय को बढ़ावा देता है, भारत जैसे लोकतान्त्रिक राष्ट्र में अपराधी बरी हो रहे हैं, गीता ही हमें इस दलबन्दी से ऊपर उठाती है क्योंकि वकील सोचते हैं कि यदि मेरे भतीजे ने अपराध किया भी है तो भी वह निर्दोष है। गीता हमें यही शिक्षा देती है– निजधर्म से श्रेष्ठ राजधर्म है, अपराधी कोई भी हो उसे दण्ड दो, वह उसके कर्मों का फल है। स्मृतियाँ भी कहती है कि–

पिताचार्य सुहृन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः।

नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति।।

पिता, माता, आचार्य, मित्र, स्त्री, पुत्र कोई भी अपने धर्म के अनुसार कार्य न

करे तो उसे दण्ड अवश्य दें। जिस दिन हमारी न्याय व्यवस्था में इस तत्त्व को लागू किया जाएगा कोई संदेह नहीं हम श्रेष्ठता के शिखर पर होंगे। राष्ट्र की रक्षा के लिए ही कृष्ण ने अपने मामा का वध किया, महाभारत भी एक राष्ट्र युद्ध था जिसमें राष्ट्र की रक्षा के लिए अर्जुन ने अपने गुरु, मित्र और भाई बन्धुओं को दण्डित किया। विलियम शेक्सपीयर के हैमलेट नाटक ग्रन्थ में भी एक ऐसे राजकुमार का वर्णन किया गया है जिसके चाचा ने उसके पिता का वध कर उसके पिता से राजगद्दी भी छीन ली और उसकी माता को अपनी पत्नी बना डाला। ऐसी अव्यवस्था में वह क्या करें क्या न इस शोक से व्याकुल होकर वह पागल हो गया। इस नाटक के निष्कर्ष में स्वयं शेक्यपीयर लिखता है– ''यदि हैमलेट को गीतादर्शन का ज्ञान होता तो यह कुशलतापूर्वक इस समस्या का निदान प्राप्त कर लेता। गीतादर्शर्न की इसी महत्त्वता को द्योतित करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी कहते है कि यदि मेरे पास गीता रूपी अस्त्र न होता तो मैं इस राष्ट्र की सेवा नहीं कर पाता। गीतादर्शन से मैं शोक में भी मुस्कुराने लगता हूँ, जिस समय मुझे शङ्काएँ घेरती है, निराशाएँ मेरे सम्मुख होती है इस स्थिति में जब मैं गीता की ओर ध्यान देता हूँ तो मैं अपने आपको श्रेष्ठता के सर्वोच्च शिखर पर प्राप्त करता हूँ एवं भारतवासियों को भी इसका अनुसरण करने की प्रेरणा देता हूँ।'' यहाँ उल्लेखनीय यह है कि गीतादर्शन के हितकारी भावों के कारण हम सत्यमूर्ति के सामने सारापाश्चात्य जगत् नतमस्तक हो गया।

(ख) आतङ्कवाद, क्रोध तथा मानसिक वासनाओं का निवारण एवं परोपकार की भावना का विकास–

गीता के शब्दों में राष्ट्र में संघर्ष का कोई और कारण नहीं अपितु यह मानव शरीर ही एक कुरुक्षेत्र है गीतादर्शन के अनुसार–

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।। (गीता १३.१)

इन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार पाँचों विकार और सत्व, रज, तम तीनों गुणों का विकास इसी क्षेत्र का विस्तार है, प्रकृति से उत्पन्न इन गुणों से विवश होकर मनुष्य गलत कार्य कर बैठता है। इन्हीं इन्द्रियों को गीता संयमित करती है। गीता हमें यह ज्ञान देती है कि क्रोध विनाश की जड़ है, इससे बचो–

क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहद्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। (गीता २.६३)

मैथिलीशरण गुप्त जी इसी बात का समर्थन करते हुए कहते है कि पांडवों के पास कुछ न था, बन्दरों के पास कुछ न था, अगर था तो केवल धैर्य, जिसनें उन्हें श्रेष्ठ बनाया। अत: अपने मन में व्याप्त क्रोध को धैर्य से जीतो महाभारत में विदुर कहते है– **''अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्।''** सन्त तिरूवल्लूवर जी साड़ियों की तानाबुनी करते थे और एक दिन में प्राय: दो साड़ियों के चार रूपये प्राप्त होते थे, जिससे उनका जीवन चलता था। उनकी कर्तव्यनिष्ठा एवं यश को धूमिल करने की मंशा से एक अहंकारी सेठ जो उनके ही है। इस प्रकार वह युवक साड़ी को फाड़ता चला गया और उसने उस साड़ी के ६४ टुकड़े कर दिये, और बोला यह टुकड़े मेरे किसी काम के नहीं, मुझे नहीं चाहिए, नहीं चाहिए तो कोई बात नहीं, तिरूवल्लूवर जी बोले, युवक ने देखा कि इनके चेहरे पर शिकन की एक रेखा भी नहीं आई, कितना धैर्य है इनमें उनकी इस विलक्षता से प्रभावित हो वह सेठ उनके चरणों में गिर पड़ा, इस विलक्षणता का कारण पूछने पर संत ने उससे कहा कि भक्तिभाव में विश्वासकर गीतादर्शन के इस तत्त्व को सदैव स्मरण रखो–

यं हि न व्यथयन्ते ते पुरुषं पुरुषर्षभ।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृत्तत्वाय कल्पते।। (गीता २.१५)

वास्तव में यह युवक पाश्चात्य जगत का प्रतीक है। जिसे अन्त में गीतादर्शन के आगे नतमस्तक होना ही पड़ा इसीलिए तिरूवल्लूवर जी कहते है कि– यदि भारत की आधुनिक पीढ़ी गीतादर्शन को अपने व्यवहार में लाए तो वह दिन दूर नहीं जब सारा विश्व हमें ऊँची दृष्टि से देखेगा। परन्तु आज का युवक अपने आदर्श को भूल चुका है, अपने हित के लिए किसी का भी रक्तपिपासु हो जाता है, यही कारण है कि आज प्रकृति भी उसका साथ नहीं दे रही, क्रोध तथा मोह के कारण सभी आन्तरिक युद्ध में उलझे हुए है, समाज में बलात्कार तथा अपहरण जैसे घिनौने कर्मों में अपना ताण्डव मचा रखा है, हमारी वासनाएँ को गर्त में लेकर जा रही है, युवक युवतियाँ पाश्चात्य संस्कृति और पद्धतियों का अनुसरण कर रहे है, मैकाले द्वारा प्रचलित शिक्षण पद्धति ने आज के मानव को इतना स्वार्थी बना दिया है कि हम दूसरे के मुँह का अन्न भी छीनने में लगे हुए

हैं, इसी समस्या के समाधान में गीतादर्शन कहती है कि–

इन्द्रियस्येद्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।

तयोर्न वशमागच्छेत तौ हास्य परिपंथिनौ।। (गीता ३.२)

भाव यह है कि आज के युग में इन्दिय को संयम में रखने वाला ही श्रेष्ठ हैं आज हम देखते है कि, हार्टअटैक जैसी जानलेवा बीमारियाँ उत्पन्न हो रही है, जिनका एकमात्र कारण मन की चञ्चलता है, इस चञ्चलता को संयमित करने के लिए श्रीकृष्ण जी कहते हैं– हे अर्जुन! योग को अपनाओं मन की चञ्चलता को दूर करो, क्योंकि–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।। (गीता २.५०)

आज के इस राष्ट्र की एक अन्य समस्या है– ''**हिंसा का बढ़ता प्रचार**'' लालच की पूर्ति न होने पर क्रोध और हिंसा जन्म लेती है, इस हिंसक भावनाओं को मिटाने के लिए गीतादर्शन की यही पंक्ति पर्याप्त है– **अयं आत्मा ब्रह्म** सभी जीवों में एक ही आत्मा है अतः जिस कार्य की दूसरे से तुम अपेक्षा नहीं रखते, प्रतिकूल मानते ही, उसे मत करो–

न तत्परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।

यह उपनिषदों का सार सदैव स्मरण रखो– **''यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं''** जैसे यह सभी वैसा ही मैं भी हूँ हिंसा को त्यागो। समाज में व्याप्त वर्ण विषमाताओं का समाधान–वर्ण का नाम पर आज साम्प्रदायिक दंगों हो रहे है, अनेकता में एकता वाले इस राष्ट्र की अखण्डता भङ्ग होती जा रही है।

इसे देश को दुर्भाग्य मानें कि उत्थान पतन का नियम, गीतादर्शन की दूरदर्शितापूर्ण शिक्षा के बावजूद वर्ण के आधार पर श्रेष्ठ और अधम की गणना की जाती है, गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि– '**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्ट**'' सभी वर्णों का निर्धारण मैंने स्वयं किया है, सभी वर्ण श्रेष्ठ है। पर आज वर्ण के नाम पर आरक्षण क्यों सभी प्राणी समान है, आज देश की अवनीत का कारण यही आरक्षण है, इसने लोगों में अकर्मण्यता भर दी है। ३०% वाला व्यक्ति चयनित होकर राष्ट्र को भ्रष्ट किये जा रहा है और ८०% वाला मेधावी छात्र आत्महत्या किये जा रहे हैं? क्या हम ऐसे राष्ट्र से श्रेष्ठता की उम्मीद करते हैं? समाज में व्याप्त मानसिक दुर्वृत्तियाँ और उसका निवारण **धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष** में

से अर्थ की लिप्सा ने लोगों की मानसिकता को नष्ट कर नई प्रकार की दुर्वृत्तियों को जन्म दिया है, हम मन से ही अपने आपको दुर्बल समझते है, गीता के दशम अध्याय में अर्जुन ने भगवान से प्रश्न किया कि इन्द्रियादि तो काम–कञ्चन में मोहित है, और उनके ही आकर्षण से मनुष्य रूप रसादि विषय के पीछे दौड़ रहा है, अत: इससे बचने का क्या उपाय है? भगवान् ने उत्तर दिया–

यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमद्र्जितमेव वा।

जो कुछ भी श्रेष्ठ तथा सुन्दर है, वह सब मेरे तेज का अंश है। मेरा स्मरण करों और मन की दुर्बलता को छोड़ो, परन्तु आज का राष्ट्र गीता से विमुख हो गया है, हमारे छात्रों को आज पाश्चात्य शिक्षा दी जाती है जिसका आधार ही हिंसा और कपट पर आधारित है, हमारी कथनी और करनी में वैमनस्यता है गीतादर्शन के अनुसार– मन और वाणी को एक करना ही मुख्य साधना है। सामने के प्यासे को तो हम जल तक नहीं दे सकते, किन्तु सभाएँ करने में हरिप्रेम में सबको विभोर का समस्त अभावों को मिटा देशोद्धार करने चलते है। मन और वाणी को विपरीत गति का उदाहरण देखिए दुर्गासप्तशती में कहा गया है–

विद्या: समस्तास्तव देवि भेदा: समस्ता सकला जगत्सु।

(हे देवि, जितनी विद्याएँ हैं, जगत में जितनी नारी मूर्तियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्ति हैं?)

हम सभी दुर्गासप्तशतीका पाठ नित्य किया करते हैं, परन्तु हममें से कितने ऐसे व्यक्ति है जो स्त्रियों को देवी की प्रतिमा मानते हैं? छोटी सी बात को लेकर हम पत्नी पर प्रहार तक करने में नहीं सहमते? दहेज प्रथा के कारण मिट्टी तेल उड़ेलकर उसे आज के समाज में जलाया जा रहा है, कहाँ गई गीता कि एकात्मकता? हम कहा करते हैं मनुष्य मात्र नारायण की मूर्ति है, किन्तु व्यवहार में हम क्या करते हैं किसी मेहतर या नीच जाति के व्यक्ति को देखकर हम पशु से भी अधिक बूरा बर्ताव उसके साथ करने लगते हैं, गीतादर्शन में इसी तुच्छ भावना को मिटाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

क्लैब्यं मा स्म गम: पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं व्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।। (गीता २.३)

परन्तु आज गीता का अध्ययन ही कौन करता है जो गीता के तत्त्व को समझ

सके। पाश्चात्यता ने लोगों के मन से शिष्टता को निकाल दिया है, गुरु हत्या जैसे कुकृत्य देखे जा रहे हैं, परोपकार की बातें समय व्यर्थ करने जैसी लगती है, और जो कोई परोपकार करता भी है तो स्वार्थ के कारण ही, उसके मन में यह धारणा व्याप्त है कि जब मुझ पर विपत्ति आएगी वह भी मेरी सहायता करे। एक ही घर में रहने वाले व्यक्तियों में नि:स्वार्थ भावना देखने को नहीं मिलती। पुत्र रोता तो पिता की मृत्यु पर है परन्तु उसकी दृष्टि पैतृक संपत्ति पर रहती है। महाराष्ट्र के संत तुकाराम जी कहते है कि– बहू दिखाने के लिए तो रोती है सास के हित के लिए, परन्तु हृदय का भाव कुछ और ही होता है। हम कहते तो है कि– **''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' ''मा विद्विषा वहै''** परन्तु हम अपनी ही इच्छाएँ दूसरों पर थोप उन्हें कष्ट देते हैं इसके निवारण के लिए भगवान् श्रीकृष्ण जी गीतादर्शन में कहते हैं कि– ''**सन्तोषं परमं सुखम्**'' जब मानव मन में सन्तुष्ट हो जाता है और अपने मन में लोकहित की भावना को उत्पन्न करता है तो स्वयं ही उसके भीतर की सभी वासनाओं का शुद्धीकरण हो जाता है। आज हम प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे है जिससे प्रकृति जहर उगल रही है इसके निवारण हेतु सभी जीवों में अपनी सत्ता बताते हुए गीतादर्शन में श्रीकृष्ण कहते हैं– **नक्षत्राणामहं शशी।**

अत: सदैव धर्म को अपनाओं, राष्ट्रधर्म का पालन करो और जब–जब धर्म की ग्लानि दिखे मेरे सिद्धान्त का स्मरण कर श्रेष्ठता को प्राप्त करो स्वयं गीतादर्शन में कहा गया है कि–

यदा– **यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**

अभ्युत्थानधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। (गीता ४.७)

आज का यह भारत राष्ट्र न तो पूर्णरूपेण निन्द्रा में है और न ही जागा हुआ है, तन्द्रा की स्थिति में वह अंगड़ाई ले रहा है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हम देखते है कि यदि एक बजे कार्यक्रम का समय है तो वह डेढ़ बजे से पहले प्रारम्भ नहीं होता है, आज हम माता को ''माम (Mom)'' और पिता को ''डैड (dad)'' कहकर पुकारने लगे हैं, अपने जन्मदिवस के अवसर पर अथवा शुभ अवसर पर हम दीपों के बुझा कर कितना अपशुकन करते हैं यह हम नहीं जानते, आज के हमारे आदर्श या तो फिल्मी अभिनेता होते है या फिर खिलाड़ी। क्या हम ऐसे राष्ट्र से श्रेष्ठता की उम्मीद करते है जो स्वयं दूसरी संस्कृति के पीछे पड़ा है? हमें श्रेष्ठता के लिए व्यास के इस वचन को अपनाना होगा कि–

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः

वीतराग भयक्रोधः स्थितिधीर्मुनिरुच्यते।। (गीता २.५६)

अर्थात् दुःख में जिसका मन व्याकुल न हो, तथा सुख में जिसकी स्पृहा न हो, राग, भय, क्रोध स्वार्थ जिसको व्याप्त न करे उसे ही मुनि कहा जाता है। वस्तुतः मन तथा बुद्धि के स्थैर्य की आवश्यकता वर्तमान युग की माँग है। आज हम देखते है कि सभी लोग धर्मपरिवर्तन कर अपने राष्ट्र का ह्रास कर रहे है। इसाई पादरी कहते हैं कि इसाई धर्म को ग्रहण किए बिना तुम्हारे लिए नरक ही है वही बाईबल कहता है कि सर्वत्र कटु धर्म जो व्याप्त उससे (दहिशत) स्वर्ग को ओर ले जो के मार्ग मैं ही हूँ, पर लोगों को यह जानना होगा कि सभी धर्म, उपनिषदों तथा मर्म का सागर गीतादर्शन ही है। वस्तुतः अष्टावक्रगीता, बोध गीता, अनुगीता आदि की रचना ''गीता'' के बाद हुई है। परन्तु सभी समस्याओं का निदान एवं सभी धर्मों का सार श्रीमद्भगवद्गीता के ही मानते हुए कहा गया है कि–

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।(गीता महत्त्वम् ६)

अतः निष्कर्ष रूप से यह सिद्ध है कि गीतादर्शन ही सभी को श्रेष्ठता का मूल है।

(ग) आदर्शभाव तथा आत्मविश्वास का विकास कर श्रेष्ठता के उपाय

गीता के अनुसार आदर्शजीवन क्या है? आदर्शमानव कैसा हो सकता है, जो घर बार छोड़कर अरण्य में शरण लेता है अथवा वह जो इस संसार में विषम स्थितियों के ऊपर अपना प्रभुत्व जमाकर जीवन को आगे बढ़ाता है, कई लोग इसका खण्डन करते है कि यह सब ढ़कोसला है, परन्तु वास्तविकता तो यह है कि गीता कर्तव्यशास्त्र और व्यवहार शास्त्र है। गीतादर्शन हमें यह सिखलाती है कि– **स्वकर्मणातम्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।** कर्म की क्रिया में इतना ही स्मरण रखो कि यह मेरा कर्तव्य है। इससे अकर्मण्यता तुम्हें छू भी नहीं सकती और तुम स्वयं का ही नहीं अपितु राष्ट्र का कल्याण कर सकते हो, तिलक जी के शब्दों में गीतादर्शन एक ऐसी ज्वाला है जिसके सम्पर्क में आते ही सभी समस्याओं का दहन हो जाता है। आज की पीढी में आत्मविश्वास की कमी भी उनमें निम्नता तथा हीनता जो जन्म दे रही है, किसी भी विकट परिस्थिति को देखकर हम इतने भयभीत हो जाते हैं कि हमारा दिल और दिमाग कार्य करना बन्द कर देता है,

अत: गीतादर्शन ही हमें यह ज्ञान देती है कि–

यत्रयोगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम।। (गीता १८.७८)

स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था कि– शून्य पर भाषण देने को आदेश से सर्वप्रथम मैं अचम्भित हो गया, परन्तु गीता की कर्तव्यपरायणता को स्मरण न कर मैंने जो व्यक्तव्य दिया उससे मेरा और मेरे राष्ट्र का मस्तक ऊँचा हो गया। अंगद के आत्मविश्वास ने ही सारी लङ्का के पसीने छुड़ा दिये, हमारे पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम जी भी इसी आत्मविश्वास की सजीव मूर्ति रहे। पांच वर्ष से कम उम्र के बालक बुधिया की ६५ किलोमीटर की दौड़ इसी आत्मविश्वास का प्रतीक है गीता भी यही शिक्षा हमें देती है– **मन के हारे हार है मन के जीते जीत।** गीता के शब्दों में–

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।। (गीता ६.६)

जवाहरलालनेहरु के शब्दों में गीतादर्शन ने ही स्वतन्त्रता सेनानियों के मन में आत्मविश्वास पैदा कर राष्ट्र पर प्राण न्यौछावर करने की प्रेरणा दी, गीता का ज्ञान प्रत्येक भारतीय के लिए आवश्यक है बिना इसके भारतीय पङ्गु है। आत्मविश्वास तथा गीतादर्शन की भक्ति ने ही मीरा के प्याले में विष को अमृत में बदल डाला। इसलिए महामना पं. मदनमोहनमालवीयजी कहते हैं कि–''**जो गीता का भक्त है उसे निराश होने की कोई जरूरत नहीं।**'' सन्तों के शब्दों में हर व्यक्ति जो निराश है, उसे गीता दर्शन की आवश्यकता है। भारत के न्यायालय में गीता पर हाथ रखकर न्याय की आशा अभी तक की जाती है, लोगों में विश्वास है कि गीता उनके साथ अन्याय नहीं होने देगी।

(घ) पाश्चात्य संस्कृति का कुप्रभाव तथा उसका गीतादर्शन द्वारा निवारण

आज हमारी पीढ़ियाँ पाश्चात्य संस्कृति के पीछे दौड़ रही है, माता पिता बच्चों को कान्वेन्ट विद्यालयों में दाखिला दिलवाना चाहते है, आज की युवा पीढ़ी खाती अपने देश का है और राष्ट्र सेवा के समय विदेशी भूत उन पर सवार हो जाता है, यही ठीक है कि आधुनिक समय में गीता की नितान्त आवश्यकता है परन्तु इसके लिए अपनी संस्कृति को भूलना कहाँ तक श्रेयस्कर है गीता हमें यह बतलाती है– ''**राष्ट्र ही सर्वस्व है**'' श्रीराम जी स्वयं इसका प्रतिपादन करते हुए कहते है कि– ''**जननी जन्मभूमिश्च**

स्वर्गादपी गरीयपि।'' लेकिन आज के युवा आध्यात्म को गंवारों की निशानी मान आधुनिक फैशन के कारण राष्ट्र को गर्त में डुबोते जा रहे हैं, खड़े–खड़े खाने के अपनत्व की समस्या जन्म ले रही है, ४० वर्ष की उम्र होते ही पैरों की पिंडलियों में पीड़ा चालू हो जाती है, अत: इस काले धुएँ में बचने के लिए हमें पाठ्यक्रम में गीता शिक्षा को लागू करना होगा क्योंकि छात्र किसी राष्ट्र के भविष्य होते हैं योग से ही हम अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकते हैं, गीता हमें उपदेश करती है कि– **तस्माद्योगी भवार्जुन।** इसी योग का प्रचार कर रामदेव जी ने विश्व पटल पर श्रेष्ठता की पताका फहराई है, पाश्चात्य संस्कृति का ही प्रभाव है कि आज समाज में आरक्षण और अंधविश्वास ने जन्म ले लिया है, गीता हमें इन सब से ऊपर उठाकर यह ज्ञान देती है कि शङ्काओं को छोड़ निश्रेयस भाव से कर्म करो, तू श्रेष्ठता को नहीं श्रेष्ठता तुझे प्राप्त करेगी।

पाश्चात्य विद्वानों के अन्धविश्वासों का खण्डन

पाश्चात्य विद्वान मानते है कि भारतीय संस्कृत मानव को उबार नहीं पाती, चाणक्य का कहना है कि शत्रु को नष्ट कर दें और स्मृति कहती है– **''शत्रुमित्रवदाचरेत्।''** तो इस विडम्बना में मानव क्या करे शत्रु को मार दे अथवा मित्र बना ले आखिर क्या करें? तो उसका समाधान यह है कि उस समय ऐसा व्यवहार करें जैसा श्रीराम ने समुद्र के साथ किया, हमारी जान लेने के लिए कोई शस्त्र लेकर आ जाए तो उसे नष्ट करना ही श्रेयस्कर है इसलिए राजा बलि कहते है–

न श्रेय: सततं तेजी न नित्यं श्रेयसी क्षमा। (श्रीमद्भागवतपुराण)

दूसरी शङ्का यह की जाती है कि फल की इच्छा के बिना कर्म कैसा यदि ऐसा हो तो दुष्ट की दुष्टता बढ़ती ही जायेगी। इसके समाधान में हमारे गीतादि उपनिषद् कहते हैं कि– **''शास्त्रोचित कर्म करो''** उस कर्म को अपने ऊपर घटाओं यदि तुम उसे सहन कर सकते हो तभी वह कर्म करो।

तीसरी समस्या यह है कि ''**महाजनो येन गत: स पन्था:**'' को कैसे अपनाएँ क्योंकि शैतान का इतिहास लिखने वाले एक ग्रन्थकार ने लिखा है कि– शैतान और देवी के युद्ध में देवताओं ने ही कपट का सहारा लिया, श्रीरामचन्द्र जी ने अग्नि द्वारा शुद्ध होने पर भी सीता का वरण नहीं किया, पाण्डवों की तो एक ही स्त्री थी, इतिहास में कोई अहिल्या का सतीत्व नष्ट करने वाला है तो कोई अपने पिता की आज्ञा से माता

का शिरच्छेद करने वाला है, पर शैतान का इतिहास लिखने वाला यह नहीं जानता कि उस समय की स्थिति क्या थी, क्या कपटी के साथ कपट व्यवहार नहीं करना चाहिए? बिल्कुल करना चाहिए महाकवि भारवि कहते हैं कि–

व्रजन्ति ते मूढ़धिय पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। (किरातार्जुनीय१.३)

आज हम योग को ढ़कोसला मारने लगे हैं। वास्तव में इसी धारण के कारण आज हर भारतीय भी अपनी शारीरिक क्षमता खोते जा रहे हैं, कई बालक प्रयत्न करने पर भी परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो पा रहे हैं, वे मन को एकाग्र नहीं कर पा रहे, इसी मानसिक शक्ति को क्रेन्द्रित करने का साधन योग है जिसका गीतादर्शन में वर्णन किया गया है, वह योग की ही शक्ति है। जिस कारण विवेकानन्द सरस्वती जी एक दो बार में ही कठिन ग्रन्थों को याद कर लेते थे, अत: योग हमारी चञ्चलता को दूर कर हमें श्रेष्ठ बनाती है। एक बार एक विदेशी ने स्वामी जी से पूछा कि– आपके पास क्या है जो आप अपने आपको इतना गौरवान्वित महसूस करते हो। स्वामी जी का उत्तर था हमारे पास गीतारूपी अस्त्र है। जिससे हम विश्व की किसी भी शक्ति को चुनौदी दे सकते है। आज के युग में इस अद्वितीयग्रन्थ का सभी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है जो इसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है।

निष्कर्ष : गीतादर्शन ही राष्ट्र की श्रेष्ठता का मूल है।

गीता के कारण ही आज भी हम आध्यात्मिकता के क्षेत्र में श्रेष्ठ है। गीतादर्शन की इस विलक्षणता की प्रशंसा करते हुए मैक्समूलर कहते है कि गीता दार्शनिक के लिए दर्शन, ज्योतिर्विद के लिए ज्योतिष, योगी के लिए योगशास्त्र है। तिलक के अनुसार सांसारिक माया मोह से मुक्ति गीता ही दिलवा सकती है, उनके शब्दों में विश्व की सारी पुस्तकें मिलकर भी गीता दर्शन से स्पर्धा नहीं कर सकती है।

अत: मैं यही कहना चाहता हूँ कि– **''गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।''** अर्थात् गीता दर्शन में ही सभी शास्त्रों का सार निहित है। इसके द्वारा ही हम अपना, अपने समाज का राष्ट्र या विश्व का कल्याण कर सकते हैं।

।। ॐ श्री कृष्णार्पणमस्तु ।।